(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-30 दिसम्बर-2021 अंक-12

जीवन के कुछ सत्य

हमारा परमात्मा हमारे भीतर ही है।
हम उसे खोजने के लिए, न जाने कहां कहां भटकते हैं?
अंत में खाली हाथ ही लौट आते हैं।
हर पल, हर घड़ी, वो परमपिता हमारे हृदय द्वार पर विराजमान;
इसी प्रतीक्षा में रहता है-
कि हम कब उसकी तरफ मुख करेंगे?
जैसे ही हम, भीतर की तरफ अग्रसर होंगे-
परमात्मा अपनी बाहें फैलाए, हमारा स्वागत करता मिलेगा।

इस जिन्दगी की दौड़ में-इतना ना फंसें हम कि;
परमात्मा हमारे ही भीतर है, देख ना सकें हम।

-श्रीमती गुंजन गोयल (09896269674)

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

Website : chetna-vigyan.in

पहचानो और मानो; उस दिव्य शक्ति को वो हर समय हमारे साथ है

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

वो ही शक्ति, असल में काम कर रही है। पता नहीं इंसान आंख मूंद कर, एक ही रट लगा रहा है कि जो कुछ हो रहा है-उसी के करने से ही, हो रहा है। वह कुछ न करता-तो शायद संसार का कोई प्राणी, पेट न भर सकता और यह संसार चल ही नहीं सकता।

ईश्वर की शक्ति को कहीं देखने नहीं जाना पड़ता।

थोड़ा सतर्क होकर रहें तो महसूस कर पाएंगे-हर पल, हर क्षण-उस शक्ति को। हुआ यूं कि एक महीना पहले हमारे घर में दो मोटे मोटे चूहे घूम रहे थे और नुकसान भी कर रहे थे-तो मैंने पिंजरा लगाकर उनको घर से निकाल दिया। एक महीने के बाद मैंने अचानक देखा-एक चूहिया को, जो नाच रही थी। फिर पिंजरा लगाया-एक नहीं; अनेक एक एक करके आई। मेरा दिमाग सोचने पर मजबूर हो गया कि इनके मां बाप तो वही थे - जो एक महीना पहले निकाल दिए गए थे। फिर इनका लालन पालन और खाने की व्यवस्था कैसे-स्टोर में हुई होगी? वहां तो खाने का कुछ होता ही नहीं-तब वो पैदा ही हुई होंगी।

देखो! इसमें दिखाई दी न, उस ईश्वर की शक्ति।

उनका पालन कोई और नहीं; वही शक्ति कर रही थी। ऐसी घटनाओं से हम चाहें, तो अपना वहम मिटा सकते हैं कि मैं (Ego) के आगे कुछ और भी है-जो दिखाई नहीं दे रहा; जिसे अनुभव हर घड़ी कर सकते हैं। उस शक्ति को पाने के लिए और अनुभव बढ़ाने के लिए हम, जो कुछ समय ध्यान के लिए बैठते हैं-अर्थात् उस शक्ति को बढ़ाने के लिए, वही ध्यान है। ध्यान है भी बहुत जरूरी-क्योंकि उस 'ध्यान के अभ्यास' से ही सम्भव हो पाएगा।

कई लोग मानते ही नहीं, और कई को पता ही नहीं कि ध्यान क्या है?

वास्तव में इससे सब कुछ पा सकते हैं-मैंने सुनी एक कहानी। एक ध्यान करने वाला ध्यानी, पेड़ के नीचे बैठ कर ध्यान कर रहा था। एक लकड़ी काटने वाला आया-लकड़ी काटी और चला गया। दूसरे दिन फिर और तीसरे दिन फिर-जैसे

उसका काम था। परन्तु चौथे दिन, ध्यानी ने उसे बुलाया और कहा कि तुम रोज इतनी सारी लकड़ी काट कर बेचते हो–तुम्हारे पास तो बहुत धन इक्ट्ठा हो गया होगा ? लकड़हारा हंसा और कहने लगा कि बस रोज इतना ही हो पाता है, जिससे हम पेट भर खाना, एक दिन खाकर रात को अच्छे से सो लेते हैं।

ध्यानी ने कहा–अच्छा मैं तुम्हें बताता हूं। कल तुम इससे आगे के बाग में जाना–वहां चन्दन के बाग हैं। उसकी लकड़ी बहुत महंगी होती है–तुम एक बार बेच कर, कई दिन आराम से खा लोगे। उसने वैसा ही किया–चंदन की लकड़ी काटी और बेची। चार पांच रोज आराम से गुजारा हो गया।

वो उसका धन्यवाद करने गया–तो उसने कहा कि कल तुम और आगे जाना, वहां चांदी की खान है। पैसा ज्यादा मिलेगा, कुछ सप्ताह आराम से कट पायेंगे–उसने वैसा किया। सच में चांदी की खान और पैसा भी अधिक–आराम, महीने भर। अब एक दिन उसकी बुद्धि में आया कि इस आदमी को सब पता है और मेरे को बता रहा है–पर खुद, यहां आंख बन्द करके बैठा है।

इसका मतलब यह है कि इन खानों से भी ज्यादा कीमती चीज–इसके पास है, जो वह चंदन और चांदी की खानों की परवाह नहीं करता। तब वह आदमी उसके पास गया और पूछा। उसने बताया कि वास्तव में वह बड़ा धनवान् है–क्योंकि उसके पास ध्यान करने से ईश्वर की शक्ति है, जिसका दुनिया में कोई मुकाबला नहीं। इस शक्ति के रहते, कर्म थोड़ा और मिलेगा ज्यादा–सन्तुष्टि पूर्ण।

भला इतना सुनने के बाद किसका मन नहीं करेगा कि मैं भी उस अनमोल खजाना पाने का रास्ता जानूं? लकड़हारे ने उस ध्यानी से प्रार्थना करी कि मुझे भी वह उस रास्ते का ज्ञान दे, जिससे मैं भी उस धन को पा सकूं। ध्यानी ने बताया कि वह रास्ता अत्यन्त सरल और सहज है, जिसमें करना कुछ नहीं होगा और मिलेगा बहुत कुछ।

कुछ देर आंख बंद करके सुख आसन में एक बार राम का नाम लेकर चुपचाप बैठ जाना है–जो विचार चलते हैं, मात्र उनको देखना है। तीस मिनट बैठकर भगवान् का धन्यवाद करना है कि ईश्वर ने आपको अपने पास, अपने साथ

बैठने का मौका दिया। भगवान् करे, ऐसा मौका भगवान् हर एक को दे। यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

बिखरा पड़ा है मेरे ही घर में तेरा वजूद,
मैं बेकार महफिलों में तुझे ढूंढ़ता फिरता हूं॥

डॉ० शम्भूनाथ द्वारा लिखित, ध्यान पत्रिकाओं का सार–

वर्ष 2007 – 18.1 = 25.10 (10 – 18) व 25.11 = (26 – 29);
18.2 = 27.9 (20 – 27); 18.4 = 29.5 (23 – 30);
18.5 = 25.10 (21 – 26); 18.6 = 20.6 (3 – 12);
18.7 = 24.12 (22 – 26); 18.8 = 25.9 (21 – 27);
18.9 = 29.6 (27 – 32) व 29.7 = (2 – 3);
18.10 = 27.9 (13 – 18);
18.11 = 27.9 (18 – 20); 18.12 = 27.9 (6 – 11);

वर्ष 2008 – 19.1 = 26.2 (8 – 13);
19.2 = 25.7 (7 – 12); 19.3 = 27.7 (6 – 12);
19.4 = 26.1 (8 – 14); 19.5 = 27.8 (6 – 12);
19.6 = 27.6 (7 – 14);
19.7 = 27.6 (22 – 26) व 27.7 (18 – 22);
19.8 = 20.11 (5 – 15); 19.9 = 25.12 (11 – 19);
19.10 = 27.6 (16 – 21).

(1936-2009)

ज्ञान यज्ञ की समीक्षा

✍ डॉ० शम्भूनाथ

श्रीमद् भ० गीता के अनुसार–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेश वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ 3/10॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमगप्स्यथ॥ 3/11॥
इष्टानभौगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो मुंङक्ते स्तेन एव सः॥ 3/12॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भंजते ते त्ववं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ 3/13॥

III-10

Having created mankind,
With spirit of sacrifice,
In the beginning of creation,
The Creator gave advice,
Multiply, by selfless service,
And enjoy the bliss, O, wise.

III-11

Cherish the gods un-interestedly,
And cherish they would,
Fostering each other,
Attain the highest good.

III-12

Fortered by sacrifice,
Gods will give thee,
Unasked all desires,
Happiness and glee.

Person not giving gifts,
In return to them in belief,
And enjoys all alone,
Acts like a thief.

III-13

Relieved of sins, are virtuous, who use,
After sacrifice what remain,
Sinful cook for themselves,
And eat sin in vain.

भ० गीता (3.10) का शाब्दिक अर्थ है-प्रजापति ने कल्प के आदि में यज्ञसहित प्रजा को रचकर कहा कि इस यज्ञ द्वारा तुम लोग, वृद्धि को प्राप्त होवो और यह यज्ञ, तुम लोगों की इच्छित कामनाओं को देने वाला हो-अर्थात् जब ब्रह्मा ने यह सृष्टि रची-जिसमें तीन तरह की चीजें-निर्जीव वस्तुएं, शक्तियां और प्राणी थे-उसी समय उन्होंने एक यज्ञ की भी रचना की।

ब्रह्मा, 'अनन्त सत्ता' है और 'अनन्त सत्ता' द्वारा की हुई रचनाओं में-सीमाओं का कोई स्थान नहीं होता। बाहर के जगत में कुछ बड़ी बड़ी शक्तियां हैं, जैसे-वायु, अग्नि, पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण शक्ति, सूर्य, चन्द्र और तारामण्डल इत्यादि की शक्तियां। यद्यपि आज के वैज्ञानिक, इनके विस्तार और इनकी शक्तियों को भी नाप लेने का दावा करते हैं-लेकिन जो भी नाप वे बताते हैं, वे गणना के आधार पर, सही या गलत हो सकते हैं-लेकिन कम से कम मनुष्य की अनुभव शक्ति (Power of Realization) के आधार पर इनका अन्दाजा लगाना असम्भव है।

ऐसा सिर्फ इसलिए है-क्योंकि ये 'अनन्त द्वारा रचे' गए हैं और इसीलिए अनन्त की दुनियां में सीमाओं का कोई स्थान नहीं है। ये बड़ी बड़ी शक्तियां ही, मानव समाज में देवताओं के नाम से प्रचलित हैं। जहां तक निर्जीव वस्तुओं की बात है, जैसे-सोना, चांदी, तांबा, पीतल इत्यादि-तो ये प्रकृति में किस मात्रा में है?

अनुभव के आधार पर, इसका अन्दाजा लगाना असम्भव है - लेकिन जहां तक 'ब्रह्मा द्वारा रचे गए यज्ञ' की बात है-वह, केवल प्राणियों से सम्बन्ध रखता है। यदि करने की बात है-तो यज्ञ, केवल मनुष्य करेगा और यदि यज्ञ होने की बात है तो वह-जल, थल और नभचर के सारे 'प्राणियों के माध्यम' से होगा। प्रथम प्रश्न तो यह है-कि वह यज्ञ क्या है- जिसकी रचना ब्रह्मा ने उसी क्षण कर दी-जिस क्षण, उसने सृष्टि की रचना की थी?

ब्रह्मा, सृष्टि के कण कण में एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में व्याप्त है। प्रकृति की अलग अलग शक्तियों को देखकर हम, आसानी से अनुभव लगा सकते हैं-कि 'शक्तियों की दुनियां' में कुछ होता तो है, लेकिन कुछ करने की बात नहीं होती। यह दूसरी बात है कि जो कुछ उनके द्वारा होता है-उसे हम, अपनी भाषा में 'उनके द्वारा किया जाना' कह दें। लेकिन जो कुछ होता है, उसमें भी शक्ति स्वयं सक्रिय तो है-परन्तु उसमें किसी वस्तु या किसी क्रिया की मदद नहीं है। क्रिया तो हम, केवल उसे कहते हैं-जिसमें किसी न किसी 'कर्मेन्द्रिय का सक्रिय होना', अनिवार्य हो। ऐसे यज्ञों को, जिनमें क्रियाओं और वस्तुओं का होना, अनिवार्य हो-शास्त्रों में 'द्रव्य यज्ञ' कहा गया है, लेकिन ऐसा कोई यज्ञ ब्रह्मा ने नहीं रचा होगा-यह स्पष्ट है।

वह, कौन सा यज्ञ है-जिस यज्ञ को स्वयं ब्रह्मा ने उस समय रचा था, जिस समय उन्होंने सृष्टि की रचना की थी? ब्रह्मा द्वारा कुछ होता है-वे कुछ करते नहीं, इसलिए ब्रह्मा की शक्ति, मनुष्य के जीवन में 'होने की शक्ति' के रूप में जानी जाती है। जैसे-खून नसों में प्रवाहित होता है, प्रवाहित नहीं किया जाता। सांस चलती है, चलायी नहीं जाती इत्यादि। प्राणी के पैदा होने के बाद उसका 'लालन पालन', समाज करता है। मनुष्य, अपने बच्चों का 'लालन पालन' करता है और जानवर, अपने अपने बच्चों का लालन पालन करते हैं। लेकिन बच्चों की रचना, गर्भ में प्राकृतिक होती है-वह, की नहीं जाती।

बच्चा, जब पैदा होता है-वह ईश्वर स्वरूप है, ऐसा कहा जाता है। यदि हम मनुष्य के बच्चे की ओर अपना ध्यान ले जायं और उस यज्ञ को समझने की कोशिश करें-जिसे ब्रह्मा ने 'कल्प के आदि' में रचा था-यज्ञ की परिभाषा तो सिर्फ यह होगी कि यज्ञ-जीवन का संचालन करने वाला हो, वृद्धि करने वाला हो और 'इच्छित कामनाओं को देने वाला' भी हो। बच्चा, जब पैदा होता है-तभी से उसके जीवन में 'ब्रह्मा द्वारा रचा हुआ यज्ञ' होने लगना चाहिए-जिसके परिणामस्वरूप उसके जीवन का संचालन होता है-उसकी वृद्धि होती है और उसकी कामनाएं भी पूरी होती हैं।

बच्चा, शुरु शुरु में ज्यादा से ज्यादा समय के लिए, 'गहरे से गहरा आराम (Relax) करता है। इस समय उसकी चेतना 'बुद्धि से परे के क्षेत्र' - अर्थात् 'भावातीत क्षेत्र' में होती है और उसके बाद, 'बाह्य जगत' के 'क्रिया के क्षेत्र' में आती है। यद्यपि उस समय, उसकी क्रियाएं-मात्र रोना, हंसना, हाथ पैर चलाना, मल मूत्र त्यागना और दूध पीने इत्यादि तक ही सीमित रहती हैं। मात्र इतने से ही इसके जीवन का संचालन, वृद्धि और मनोकामनाओं की पूर्ति होती रहती है।

यहां 'ब्रह्मा द्वारा कल्प के आदि में रचा गया यज्ञ'-बच्चे के जीवन में हो रहा है और वह, 'गहरे से गहरा आराम' के बाद-बाह्य जगत में 'क्रियाशील होता' है-इस यज्ञ-अर्थात् 'गहरे से गहरा आराम' (Relax) के बाद, क्रिया के क्षेत्र में आए बिना-किसी भी प्राणी के जीवन का संचालन असम्भव होगा, चाहे वह किसी भी कोटि का प्राणी हो और चाहे उसकी जो भी आयु हो।

यदि हम, मनुष्य की बात करें-तो हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति का जीवन, समय बीतने के साथ साथ गहरे से गहरे आराम द्वारा और अधिक बड़े सुख की ओर अग्रसर होता जा रहा है-केवल उसी के जीवन में इस यज्ञ का संचालन, ठीक से हो रहा है। इसीलिए जीवन को 'अखण्डता प्रदान करने वाला', मात्र यह यज्ञ ही है। बच्चा, जिसकी 'बुद्धि का विकास' अभी नहीं हुआ है-उसकी 'स्वेच्छा से कुछ करने की शक्ति', सक्रिय नहीं होती-मात्र उसकी 'आत्मसत्ता ही सक्रिय' रहती है और वह, उसके मन को 'इन्द्रियों से परे की आत्मसत्ता के जगत' में ले जाने में लगी रहती है-जिसके कारण वह ज्यादा से ज्यादा समय, उसी क्षेत्र में व्यतीत करता है-यदि वह, उसके बाद 'इन्द्रिय जगत' में आकर कुछ नहीं करता-तो वह, 'ब्रह्मा द्वारा रचा हुआ यज्ञ' पूरा नहीं होगा।

समाज का गठन, कुछ ऐसा है कि हम, बच्चे की 'बुद्धि के विकास' की ओर तो पूरा ध्यान देते हैं-लेकिन 'आत्मसत्ता के विकास का रास्ता' ही हम भूल चुके हैं। बुद्धि का विकास, मन को इन्द्रिय जगत में ज्यादा सक्रिय रहना सिखाता है। 'मन के विकास की शिक्षा की कमी' में वह, गहरा आराम करने की अवस्था में नहीं रहता। अत: वह उतने आराम से ही, काम चलाने लगता है-जितने

आराम के बाद उसकी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां, कुछ सक्रिय हो सकें। इसी बात का अनुभव हमें, उस समय होता है-जब हमारी निद्रा उतनी गहरी नहीं होती-जितनी गहरी, बचपन में हुआ करती थी-दूसरे शब्दों में 'ब्रह्मा द्वारा रचे हुए यज्ञ का संचालन' युवा और वृद्धावस्था में, उतनी अच्छी तरह नहीं होता-जितनी अच्छी तरह बचपन में होता था।

यही हमारे जीवन में दुःखों का कारण है।

यदि जीवन में दुख है-तो जीवन का संचालन ठीक से नहीं हो रहा है। इसका कारण, मात्र यह है कि 'ब्रह्मा द्वारा रचे हुए यज्ञ का संचालन' करने की शिक्षा, समाज से गायब हो गई है। साधारण मनुष्य के लिए-इस यज्ञ हेतु समय निकालना, मुश्किल होता गया।

हमारा विश्वास, धीरे धीरे 'द्रव्य यज्ञ' में बढ़ने लगा। ब्रह्मा द्वारा रचा हुआ यज्ञ-जिसके संचालन के लिए, न तो क्रियाओं की आवश्यकता है और न ही वस्तुओं की-शास्त्रों में इसे 'ज्ञान यज्ञ' के नाम से बताया है। भ० गीता (3.10) में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा-मात्र ब्रह्मा द्वारा रचे हुए यज्ञ द्वारा, जिसकी व्याख्या ऊपर की गई है-तुम लोग, वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ, तुम लोगों की 'इच्छित कामनाओं' को देने वाला हो। वृद्धि को प्राप्त होने का अर्थ है-मन और अधिक बड़े सुख की ओर अग्रसर होता चला जाय।

'ब्रह्म सुख या आत्म सुख' से बड़ा सुख, सृष्टि में नहीं है।

केवल वह व्यक्ति, जो 'ध्यान के नियमित अभ्यास' द्वारा, इस सुख की ओर बढ़ते हुए-क्रियाओं में आने का जीवन जीने लगता है, मात्र ऐसे व्यक्ति की वृद्धि सम्भव है।

जीवन में 'अखण्डता' आ सकती है। जिसके जीवन में 'अखण्डता का गुण' बढ़ता चला जाता है-केवल उनकी ही इच्छित कामनाएं, पूरी होती जाती हैं। सन्त तुलसीदास ने रामायण में साफ लिखा है-

कोउ न काहू सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

सत्य तो केवल यही है कि कोई भी व्यक्ति, किसी दूसरे को न सुख दे सकता है और न ही दुख दे सकता है। इस तरह से मात्र भ० गीता का यह एक श्लोक ही हमारे जीवन के दुखों का कारण; और उनके निवारण का उपाय बताने में सक्षम है। पूरी भ० गीता पढ़ना, बहुतों के लिए मुश्किल हो सकता है-लेकिन ऐसे ही एक श्लोक को जीवन में उतार लेना ही, काफी होगा-चाहे किसी अन्य श्लोक की ओर हमारा ध्यान जाय, या न जाय।

भ० गीता (3.11) का शाब्दिक अर्थ है-इस यज्ञ में उपरोक्त बताये हुए यज्ञ द्वारा तुम, देवताओं की उन्नति करो और वे देवता, तुम लोगों की उन्नति करेंगे। इस प्रकार आपस में एक दूसरे की उन्नति करते हुए, परम कल्याण को प्राप्त होवो-

देवताओं में कमीं यह है कि वे, मनुष्य पर निर्भर करते हैं।
वे अपनी उन्नति करने में स्वयं सक्षम नहीं हैं।
उनकी उन्नति में केवल मनुष्य ही सहायक हो सकता है।

यदि हम, उनकी उन्नति करेंगे-तभी वे, हमारी उन्नति करने योग्य बने रहेंगे और वे हमारी भी, उन्नति करेंगे। लेकिन यदि उनकी उन्नति में रुकावट पैदा होगी-तो वे, हमारी उन्नति करने योग्य नहीं रहेंगे-और बिना देवताओं की मदद के, यदि मानव की उन्नति असम्भव नहीं है-तो कम से कम इतनी कठिन जरूर है कि समाज में बहुत मुश्किल से कुछ ही ऐसे व्यक्ति मिल पायेंगे-जो बिना देवताओं की मदद के भी अपनी उन्नति करने में सक्षम होंगे। इसलिए इस श्लोक में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि हर मनुष्य का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह, 'यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करे-जिससे देवता भी, उनकी उन्नति कर सकें और दोनों एक दूसरे की उन्नति करते हुए पूर्णता को प्राप्त हों।'

यदि सूर्य का प्रकाश, बिल्कुल न मिले-तो क्या होगा? जब लगातार 8-10 दिन तक बदली के कारण सूरज, दिखाई नहीं देता और पानी बरसता रहता है। उस समय यही कामना होती है कि किसी तरह सूर्य देवता, प्रकट हों-लेकिन सूर्य देवता, हमारी इस कामना की पूर्ति करने योग्य नहीं होते। इसी तरह से कड़ी गर्मी के मौसम में त्राहि त्राहि मचने लगती है और यह कामना अपने आप उभर आती है

कि यदि 'बादल देवता', सूर्य के इस ताप को कुछ कम कर सकें-तो कितना अच्छा हो?

ऐसे भी हजारों उदाहरण मिलते हैं-जैसे बादल, कभी कभी इच्छित कामना के मुताबिक आवश्यकतानुसार पानी बरसाने की बजाय-इतना अधिक पानी बरसा देते हैं कि कुछ जगहों की सारी नदियों में भयंकर बाढ़ आ जाती है और वहां का एक एक व्यक्ति, परेशान हो जाता है। कभी कभी 'अग्नि देवता', हमारे जीवन में इतना बड़ा नुकसान पहुंचा देते हैं कि मनुष्य उसे सह नहीं पाता-यद्यपि अग्नि के बिना भी, जीवन का संचालन असम्भव है।

ज्योतिष विद्या के जानकारों का कहना है कि हमारे जीवन के; न मालूम कितने दु:ख के कारण तो ये ग्रह हैं-जिनमें 'नवग्रह' मुख्य हैं। ऐसा केवल इसलिए है-क्योंकि ये सभी देवता, पृथ्वी के सारे प्राणियों को सुख देने लायक नहीं रह गए हैं-इसलिए केवल कुछ व्यक्तियों को ही, सुख दे पाते हैं। सारी समस्याएं, मात्र 'इच्छित कामनाओं की पूर्ति न होने' की हैं और इच्छित कामनाओं के पूरा होने में इन देवताओं का सहयोग, बहुत महत्व रखता है-लेकिन (3.10) में बताये हुए यज्ञ के ज्ञान की कमी और यज्ञ न करने के कारण, ये देवता भी विवश हो जाते हैं और हमारी इच्छित कामनाओं की पूर्ति नहीं कर पाते।

इस यज्ञ के माध्यम से इन देवताओं की उन्नति, कैसे होती है?

'कल्प के आदि में जब, ब्रह्मा ने इन देवताओं की रचना की, तो उस समय ये देवता भी पूर्ण थे और वायुमण्डल भी 'अस्तित्व से पूर्ण' था। सन्त तुलसीदास ने रामायण में इस सत्ता के लिए-केवल राम का ही, प्रयोग किया है। इसलिए रामराज्य का अर्थ-यही हुआ कि जिस समय वायुमण्डल 'यज्ञ के संचालन के फलस्वरूप', 'आत्मसता से पूर्ण' (Saturated) था और फलस्वरूप, देवताओं की उन्नति में कोई कमी नहीं आने पाती थी-तो वे भी मनुष्यों की 'उन्नति से भरपूर योगदान' करते थे। उस समय की अवस्था को सन्त तुलसीदास ने रामायण में निम्न शब्दों में व्यक्त किया।

विधुमहि रहि पूरि मयूखन्हि, रवि तप जेतनेहिं काम।

मांगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

राचमन्द्र के राज्य में यह यज्ञ बड़े पैमाने पर होता था। उस समय वायुमण्डल-'आत्मसत्ता से पूर्ण' होने के कारण, सभी देवताओं की उन्नति करता था-अत: सभी देवता उस समय के मनुष्यों की उन्नति करने में सक्षम थे। रात्रि में पृथ्वी, चन्द्रमा की 'शीतल सुखदायी चांदनी' से भरी रहती थी। सूर्य, केवल उतनी ही गर्मी प्रदान करता था-जितनी मनुष्यों को आवश्यकता थी। बादल भी 'इच्छित कामनाओं के अनुसार', आवश्यक मात्रा में ही जल देते थे।

यह तो रही; पूरे समाज की बात। व्यक्तिगत स्तर पर भी, यदि कोई इस यज्ञ को भरपूर मात्रा में करता है-अर्थात् अधिक 'गहरे से गहरा आराम के बाद', क्रिया के क्षेत्र में सक्रिय होता है-तो सभी देवता, उसके व्यक्तिगत जीवन की सर्वतोमुखी-सभी पहलुओं की उन्नति में अपना योगदान देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि जब इस यज्ञ को करने वाले भरत जी, श्री रामचन्द्र को मनाकर चित्रकूट से अयोध्या लाने के लिए जा रहे थे तब -

किए जांहि छाया जलद, सुखद बहइ वर बात।

बादल उनके ऊपर विद्यमान रहकर, उनको छाया प्रदान करते थे और सुख देने वाली शीतल वायु भी, बहती रहती थी। ब्रह्मा द्वारा रचा हुआ यज्ञ तो, 'गहरे से गहरे आराम' के बाद क्रिया के क्षेत्र में आता है। यदि आराम करने वाला, क्रियाओं के क्षेत्र में नहीं आता-तब यह यज्ञ अधूरा-अर्थात् पूरा हुआ, नहीं माना जाएगा।

गहरे आराम या ध्यान के समय मनुष्य का शरीर नहीं; बल्कि उसकी जीवात्मा आत्मशक्ति के समुद्र में नहाती है और उसके बाद जब 'क्रियाओं के क्षेत्र' में आती है-तब वह, अतिरिक्त 'आत्म तत्व', वायुमण्डल में चला जाता है। वायुमण्डल के इसी 'आत्म तत्व से, देवताओं की उन्नति होती है। यदि सारे मनुष्य, इस यज्ञ के संचालन में अपना योगदान दें-तब वायमुण्डल में सत्; 'रज और तम' के तत्वों पर हावी रहेगा।

'बाहर के जगत' का एक नियम है कि वह, एक अवस्था में बना नहीं रह सकता। जिस दिन ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की थी-उस दिन सारे देवता, 'पूर्णता

की अवस्था' में थे। अत: देवता, जो शुरु में पूर्ण थे-उनकी 'बाहर के जगत की सक्रियता' में कुछ कमी अवश्य आयी होगी। वायमुण्डल से ब्रह्मतत्व को ग्रहण करके अपनी इस कमी को, पूरा करने में देवता सक्षम हैं-लेकिन 'प्राणियों के अन्तरतम' में प्रवेश करके, जहां पर 'आत्मतत्व का समुद्र' है-वहां से आत्मतत्व को लेने में सक्षम नहीं हैं।

ज्यों ज्यों मनुष्य ने इस यज्ञ के लिए समय निकालना कम कर दिया और मनुष्य इस यज्ञ को ही भूल गये-त्यों त्यों वायुमण्डल में 'आत्मतत्व की कमी' होती गई और ये देवता, अपनी शक्ति की कमी (टूट फूट) पूरी करने में असमर्थ होते गए। यही कारण है कि वे देवता, मनुष्यों की 'इच्छित कामनाओं को पूरा करने लायक' नहीं रह गए। यह देवताओं की विवशता है-कि मनुष्य आज, अपार दुखों की दुनियां में आ गया।

भ० गीता (3.12) का शाब्दिक अर्थ है-यज्ञ द्वारा बढ़ाए हुए देवता तुम्हारे लिए बिना मांगे ही, प्रिय भोगों को देंगे। उनके द्वारा दिए गए भोगों को जो पुरुष देवताओं को बिना कुछ दिए ही भोगता है-वह, निश्चय ही चोर है।

देवता, इच्छित कामनाओं को पूरा करते हैं।
हर मनुष्य का मन, सुख का भूखा है।
कामनाएं केवल, जीवन के सुख की ही होती हैं।
जो मनुष्य यज्ञ में नियमित रूप से भाग लेता है-

उसके मन में आत्मसुख उभरता है और क्रियाओं के क्षेत्र में आने पर उसका अंश, वायु मण्डल में चला जाता है। इसी को वायुमण्डल की शुद्धता भी कहते हैं। यह सत्य है कि प्राणियों के मन का सुख, 'वायुमण्डल की शुद्धता' से सम्बन्धित है। जहां का वायुमण्डल, शुद्ध है-वहां के प्राणियों के मन में कुछ ज्यादा आनन्द (Bliss) अवश्य है। अत: जिस समाज के मनुष्य, आनन्दित अवस्था में हैं-समाज के उन्हीं लोगों को देवता, उनके प्रिय भोगों को देंगे।

प्रिय भोगों को खरीदने वाला तो मनुष्य की 'अन्दर की आत्मसत्ता' है। इसीलिए मीरा ने इसे 'रामधन' कहा और सन्त तुलसीदास ने इसे 'हरि

प्रसाद' कहा है। सन्त तुलसीदास की चौपाई है-

'जो इच्छा करिहहु मन मांही।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नांही॥

इसका अर्थ यह है कि 'हरि का प्राशाद या आत्मसत्ता' ही या रामधन ही, 'इच्छित कामनाओं की पूर्ति' करने वाला है। इसलिए जो 'यज्ञ के माध्यम से रामधन कमाए बिना, इच्छित कामनाओं की पूर्ति' चाहता है-वह हर युग के समाज के नियमों के अनुसार, चोर ही कहलाएगा।

जो पुरुष उनके लिए, बिना दिए ही भोगता है, वह चोर है।

ऐसा सिर्फ इसलिए लिखा है क्योंकि मनुष्य, जब भोग की वस्तुएं पाता है-तब उसमें लिप्त हो जाता है और इन्द्रिय जगत के भोग का यह स्वभाव है-कि ऐसे भोगों में लिप्त होने के बाद उनमें, और भी बड़े भोगों की कामनाएं उठने लगती है। उसका परिणाम यह होता है कि वह, यज्ञ में व्यस्त होने की बजाय-केवल भोगों में ही व्यस्त हो जाता है। (3.12) के शाब्दिक अर्थ के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि देवताओं की उन्नति जिन कर्मों से होगी, उन कर्मों में व्यस्त रहना ही जीवन के प्रिय भोगों का मूल्य है। इसलिए भ० गीता में ऐसे व्यक्तियों को चोर कहा गया है-जिनके मन में इन्द्रिय भोग की कामना तो होती है, लेकिन 'ज्ञान यज्ञ के माध्यम से देवताओं की उन्नति करने की बात-वे भूल जाते हैं। इसी बात को (3.12) में लिखा है कि वह उनके लिए बिना दिए ही भोगता है।

हर चोर को दण्ड मिलना ही चाहिए। ऐसे चोरों के लिए यही दण्ड है-कि उनकी जरूरत की चीजें, मिलना बन्द होने लगें और जो कुछ उनके पास है-उनकी रक्षा भी न हो।

IX-22

Wise, who worship none, but Me,
With united thoughts, in dis-interested way,
I give them all protection,
And attend their needs in an unknown way.

भ० गीता (3.10), (3.11), (3.12) तथा (9.22)-और न मालूम कितने और श्लोक घूम फिर कर एक ही बात पर आ जाते हैं कि जीवन में सब कुछ देने वाला केवल 'ज्ञान यज्ञ' की शिक्षा और उसके आधार पर 'ज्ञान यज्ञ' का नियमित 'ध्यान अभ्यास' (Meditation) है।

समाज में मनुष्य, 'ज्ञान यज्ञ' से परिचित नहीं हैं।

अत: जब वे भ० गीता का अध्ययन करते हैं-तो यद्यपि यज्ञ शब्द, अधिकतर 'ज्ञान यज्ञ' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है-वे उसका अर्थ 'द्रव्य यज्ञ' से जोड़ देते हैं। इसीलिए साधक, जो कि अपनी साधना के प्रति बहुत ईमानदार है-सही शिक्षा न मिलने के कारण, जीवन में वह फल नहीं पाते-जो सही साधना से मिलता है।

भ० गीता (3.13) का शाब्दिक अर्थ है-यज्ञ से शेष बचे हुए को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष, सब पापों से छूट जाते हैं और जो पापी लोग, अपने लिए ही पकाते हैं-वे तो पाप ही खाते हैं। यह श्लोक तो उस ज्ञान यज्ञ से सम्बन्धित है, जिसका विवरण (3.10) में दिया गया है-अर्थात् जिसे ब्रह्मा, या प्रकृति की 'होने की शक्ति' ने रचा है। इस यज्ञ में कोई वस्तु, कहीं है ही नहीं-इसलिए यज्ञ से बचा हुआ कोई पदार्थ तो, हो ही नहीं सकता-फिर सही अर्थ क्या होगा ?

मनुष्य के जीवन के सारे भोग, उसकी भोग की अभिलाषा से जुड़े हुए होते हैं। इन्द्रिय सुख के भोग, आत्मसुख की कमी में, इन्द्रिय सुख के भोग की लालसा बढ़ाते हैं-लेकिन 'ज्ञान यज्ञ' के संचालन से बढ़े हुए आत्मसुख के साथ साथ-इन्द्रिय सुख का भोग, इन्द्रिय सुख की लालसा बढ़ाने में सक्षम नहीं है-बल्कि इन्द्रिय सुख के भोग की लालसा कम करने लगते हैं।

(3.13) तो केवल यह कहता है कि 'ज्ञान यज्ञ' के माध्यम से भोग की लालसा कम करके, बची हुई भोग की लालसा के आधार पर भोग करने वाला श्रेष्ठ पुरुष है। ठसी को कहा गया है कि 'यज्ञ से शेष बचे हुए' को खाने वाला श्रेष्ठ है।

भ० गीता के शब्दों में जो केवल अपने लिए पकाता है या सुख भोग के साधन जुटाता है-ऐसे मनुष्यों की भोगों की लालसा और अधिक बढ़ जाती है- अर्थात् भ० गीता के शब्दों में वह पाप ही खाता है।

भोगों के साधन जुटाना ही, खाना पकाना है-क्योंकि खाने का सम्बन्ध, भूख से होता है। जिन व्यक्तियों को संस्कृत का ज्ञान है-वे आसानी से समझ सकते हैं कि (10.13) में किसी भी शब्द का अर्थ, अन्न नहीं है-हमारी सारी क्रियायें किसी न किसी धेय से ही जुड़ी हैं। आज के समाज के मनुष्य की क्रियाएं ज्यादातर, इन्द्रिय सुख के भोग से सम्बन्धित सामग्री जुटाने में लगी रहती है-लेकिन जब तक इन्द्रिय सुख, आत्म सुख से जुड़ नहीं जाता-तब तक 'इन्द्रिय सुख भोग की लालसायें' बढ़ाने में मदद करता है-असन्तुष्टि की ओर मन को अग्रसर करने में तो मदद करता है, लेकिन सन्तुष्टि की ओर ले जाने में सक्षम नहीं है।

साधारण मनुष्य, केवल बाहर की चेतनाओं-घोर निद्रा, स्वप्न और जागृत अवस्था की मदद से जीवित रहता है। मात्र ध्यान के नियमित अभ्यास से जुड़ने वाले व्यक्तियों का मन, 'आन्तरिक चेतना' को प्राप्त होने लगता है। आन्तरिक चेतनाएं की 4 अवस्थाएं-(1) भावातीत चेतना, (2) ब्राह्मी चेतना, (3) ईश्वरीय चेतना और (4) अद्वैत चेतना हैं। ध्यान का अभ्यास (Meditation) बढ़ने से ये चेतनाएं बाहर के जगत की तीन चेतनाओं-निद्रा, स्वप्न एवं जागृति के साथ रहने लगती हैं- केवल तब मनुष्य, किसी एक 'आन्तरिक चेतना' के साथ 'इन्द्रिय सुख' का भोग करने योग्य हो जाता है। जब इन्द्रिय सुख के भोग के समय, 'आन्तरिक जगत की चेतना' बाह्य जगत के साथ रहने लगती है-केवल तब इन्द्रिय सुख के भोग की लालसा कम होने लगती है और मन, असन्तुष्टि की ओर अग्रसर होने की बजाय-सन्तुष्टि की ओर अग्रसर होने लगता है।

ध्यान के नियमित अभ्यास (Meditation) द्वारा या 'ज्ञान यज्ञ' के संचालन से मनुष्य धीरे धीरे आन्तरिक जगत के उच्च स्तर की चेतना को प्राप्त होने लगता है और उसके जीवन की क्रियाओं का आधार, ये उच्च स्तर की चेतना होती है-जिसे भ० गीता (3.13) में 'यज्ञ का शेष' कहा गया है। ये 'यज्ञ का शेष'-उस उच्च स्तर की चेतना है, जो यज्ञ के अन्त में शेष है-अर्थात् बढ़ाना शेष है, और हमारी क्रियाओं का आधार भी है। इस शेष के आधार की क्रियाओं पर रहने वाला, 'यज्ञ से शेष' खाने वाला व्यक्ति हुआ-और ऐसा व्यक्ति सारे पापों से मुक्त होता है।

यज्ञ के अन्त में ज्यों ज्यों मनुष्य, उच्च स्तर की चेतना को प्राप्त होता है–आन्तरिक सुख की तीव्रता बढ़ती है और ये 'बढ़ा हुआ आनन्द (Bliss) ही यज्ञ का शेष है। इसे खाने वाले व्यक्ति का अर्थ है कि वह व्यक्ति, जिसका जीवन–सन्तुष्टि का आधार, 'यज्ञ से शेष आनन्द' है–और यह 'शेष आनन्द', समय बीतने के साथ साथ केवल बढ़ता है। इसलिए जिसके जीवन की सन्तुष्टि का आधार यह आनन्द है–केवल वही, यज्ञ का शेष खाने वाला हुआ।

ऊपर भ० गीता (3.10), (3.11) और (3.12) की व्याख्या में हम देख चुके हैं कि जो भी 'ज्ञान यज्ञ के संचालन में व्यस्त' है–वह केवल अपने भोगों का ही, साधन नहीं जुटा रहा है–बल्कि देवताओं की भी उन्नति कर रहा है। इसलिए उपरोक्त तीन श्लोकों में कहा गया है–कि जो केवल, अपने लिए पकाता है–वह पापी है; अर्थात् जिनके कर्मों में देवताओं की उन्नति के लिए कुछ नहीं होता–वही पापी है।

ज्ञान यज्ञ–जलचर, थलचर और नभचर, सभी प्राणियों द्वारा होता है–लेकिन सारे प्राणियों में केवल मनुष्य, इस योग्य है–कि वह जागृत, भावातीत, ब्राह्मी, ईश्वरीय और अद्वैत–हर चेतना की अवस्था में स्वेच्छा से इस यज्ञ की ओर मुड़ सकता है–और आत्मसुख को बाहर लाकर, उसे वायुमण्डल में फैंककर–देवताओं की भी उन्नति कर सकता है। मनुष्य के अलावा, सभी प्राणी से प्रकृति–इस यज्ञ का संचालन, आराम और स्वाभाविक क्रिया के माध्यम से करा लेती है। इसलिए मात्र मनुष्य ज्यादा से ज्यादा आत्मशक्ति बाहर लाने में समर्थ है। इसीलिए कहा गया है–

बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन्हि गावा।

जो भी व्यक्ति, मात्र थकने के कारण–क्रिया करने में असमर्थ है–मात्र पुनः क्रिया करने में सक्षम होने के लिए ही यज्ञ करता है–अर्थात् केवल निद्रा की मदद से शक्ति प्राप्त करता है–वह जानवर के समान है।

ज्ञान यज्ञ का महत्व

ब्रह्म में आस्था ही, आध्यात्मिक प्रगति का आधार है।

भोजन, ऊर्जा का स्रोत नहीं है।

पैसा, केवल खरीददारी का माध्यम है–खुशी का नहीं।

किताबें सूचना प्रदान करती हैं, ज्ञान नहीं प्रदान करतीं।

ऊर्जा, खुशी, ज्ञान और प्रेम का एकमात्र स्रोत–ईश्वर है।

चेतना सर्वव्यापी है। साधक, ब्रह्माण्ड की समस्त चेतनाओं के समन्वय बढ़ाने मे सफल हों–जिसके फलस्वरूप सूर्य, चन्द्रमा और सारे ग्रह, साधकों के जीवन को सुखी बनाने में योगदान दें–लेकिन दुःखी बनाने में असफल रहें। ज्ञान यज्ञ में भाग लेने वाले साधकों के जीवन में नक्षत्र, सुख की दिशा में तो अपना योगदान देंगे–लेकिन दुःख की दिशा में नहीं देंगे। नक्षत्र हों या अन्य देगण–सूर्य, पवन या पृथ्वी–सभी के साथ उपरोक्त 'कथन की सत्यता', साधक–अपने जीवन में अनुभव करेगा।

भ० गीता 3.10, 3.11, 3.12 की भी यही मान्यता है–

(1) (3.10) में कहा गया है कि ब्रह्मा ने आदि काल में अपनी प्रजा की रचना, एक यज्ञ किया–और कहा कियह यज्ञ, मनुष्य की वृद्धि का कारण बने और मानव की कामनाओं को पूरा करने वाला हो। ब्रह्मा, जिस यज्ञ को रचेगा–उसमें किसी क्रिया और पदार्थ की मदद की संभावना, असंभव है–अतः ज्ञान यज्ञ, वही यज्ञ है–जिसकी रचना का उल्लेख भ० गीता (3.10) में किया गया है।

(2) (3.11) में श्री कृष्ण ने कहा कि उपरोक्त बताया हुआ यज्ञ, केवल मानव ही नहीं–देवताओं का भी उत्थान करेगा–अर्थात् समस्त चेतनाओं का उत्थान, इस यज्ञ द्वारा होगा। उत्थान के रास्ते की चेतनाओं का आपस में, केवल सामंजस्य बढ़ता है–विरोध नहीं बढ़ता–उठती हुई चेतना के पतन वाली चेतनाओं में अक्सर, विरोध देखा जाता है।

जब साधकगण, ज्ञान यज्ञ के लम्बे अभ्यास द्वारा, अपने वायु मण्डल को शुद्ध करने में सफल होंगे-तब यह वायुमण्डल ही, समस्त चेतनाओं का उत्थान करेगा। उत्थान के रास्ते की चेतनाओं में विरोध नहीं होता। इसलिए ऐसे साधकों को नक्षत्र और देवतागण भी, जीवन का सुख प्रदान करने में अपना योगदान देंगे-लेकिन परेशान करने में अपना योगदान बन्द करेंगे।

वायुमण्डल, समस्त चेतनाओं का बाजार है-जहां से सारे नक्षत्र और देवगण-ब्रह्मा द्वारा रची हुई शक्तियां, अपनी टूट फूट की पूर्ति के लिए प्राप्त करते हैं। बाहर का जगत-बदने वाला जगत है, इसलिए इस जगत के नक्षत्र और देवगण में भी बदलाव आना अनिवार्य है। यह बदलाव ही, उनके जीवन में 'ब्रह्म की शक्ति' की आवश्यकता का कारण है। जिस प्रकार से एक बाजार में 'मिट्टी का तेल' या पेट्रोल को पृथ्वी के अन्दर से निकालने का काम किसी देश की सरकार तो कर सकती है-लेकिन कोई व्यक्ति विशेष नहीं कर सकता, उसी प्रकार से बाहर के वायुमण्डल में नक्षत्रगण और देवगण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, वायुमण्डल को 'ब्रह्म की शक्ति' से पूरित करने की ताकत-मात्र मनुष्य में है।

प्रकृति के नियमों में एक महत्वपूर्ण नियम यह है-कि 'द्वैत जगत' में संग का प्रभाव अवश्य पड़ता है, चाहे कुसंग की बात हो, या सत्संग की हो-इस तरह से 'ज्ञान यज्ञ' द्वारा शुद्ध किया हुआ वायुमण्डल, निर्जीव वस्तुओं और प्राणियों पर अपना प्रभाव न डाले-यह असम्भव है। 'सत् से तर बतर वायुमण्डल' का संग, किसी भी चेतना को उसके उत्थान में तो मदद कर सकता है-लेकिन पतन को मदद नहीं कर सकता। इसलिए मानव द्वारा किया हुआ ज्ञान यज्ञ, अनन्त ब्रह्माण्डों की चेतनाओं को, केवल अपना दोस्त बनाता है। इस बात की पुष्टि भ० गीता (3.11 और 3.12) द्वारा होती है। (3.11) बताता है कि मनुष्य देवताओं का उत्थान करें-तब देवता, मनुष्य का उत्थान करेंगे और दोनों एक दूसरे का उत्थान करते हुए-पूर्ण संतुष्ट जीवन को प्राप्त होंगे।

(3) (3.12) बताता है कि निश्चय ही देवतागण, बिन मांगे मनुष्य के प्रिय भोगों को देंगे।

समस्त चेतनाएं, कवेल सांमजस्य की ओर बढेंगी-इस ध्येय की ओर अग्रसर होने का रास्ता, बढ़ती हुई आत्मशक्ति को नित्य ज्यादा से ज्यादा महसूस करना है।

यह सृष्टि, अनन्त ब्रह्माण्डों में बंटी हुई है। इन अनन्त ब्रह्माण्डों में, एक ब्रह्मलोक और दूसरा मृत्युलोक है। यह 'मृत्युलोक', 'ब्रह्म ज्ञान का विद्यालय' है। 'भावातीत क्षेत्र' और मन, ब्रह्मलोक (आन्तरिक जगत) के आसमान और जमीन दोनों हैं। बाहर के आसमान में एक सूर्य है, लेकिन अन्दर का पूरा आसमान ही सूर्य है और 'आन्तरिक सूर्य', मन पर सुख बरसाता है-जो हमारे घने संस्कारों से ऐसे ढक जाता है-जैसे बादल, बाहर के सूर्य को ढक लेते हैं-अत: मन, जीवन के अलग अलग पहलुओं के दु:ख को भोगने लगात है।

यदि सुख, आन्तरिक जगत का प्रकाश है-तो दु:ख, आन्तरिक जगत का अंधेरा है। पृथ्वी के सारे प्राणी, ब्रह्मलोक के पेड़ हैं। इसीलिए प्राणियों का मन, उसी तरह से छिपा रहता है-जैसे जमीन के पेड़ो की जड़ें जमीन में छिपी रहती हैं; लेकिन उसके ऊपर के हिस्से तना, डालिया व पत्ते -जमीन में कभी नहीं रहते, केवल हवा में ही रहते हैं।

इसी तरह से प्राणियों के मन के अलावा, दूसरे भाग-ब्रह्मलोक में न रहकर मृत्युलोक में रहते हैं।

जमीन पर अनन्त पेड़ है; लेकिन हर पेड़ के पास जमीन का केवल थोड़ा सा भाग होता है-इसी तरह से हर प्राणी के पास ब्रह्मलोक की जमीन (मन) का केवल थोड़ा-सा-भाग रहता है; अत: सारे प्राणियों का मन, बिल्कुल ऐसे ही मिला हुआ है-जैसे मृत्युलोक के सारे पेड़ों की जमीन मिली हुई है। पेड़ को हरा भरा रहने के लिए-जमीन को खाद पानी मिलना आवश्यक है।

इसी प्रकार से प्राणियों को ब्रह्मलोक की दुनियां का खाद पानी (ब्रह्म की शक्ति)-मिलना आवश्यक है और 'ज्ञान यज्ञ द्वारा' व्यक्ति विशेष, अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए-इस यज्ञ द्वारा, अपने मन को यह शक्ति देता है और वायुमण्डल को 'सत् से तर बतर करने' में भी अपना योगदान करता है, जिससे कि समस्त चेतनाओं का सामंजस्य अनन्त समय तक बना

रहे।

समस्त चेतनाएं तो मात्र उसी यज्ञ द्वारा, उत्थान की ओर ले जायी जा सकती हैं-जिसे कि स्वयं ब्रह्मा ने इसी ध्येय से उसी दिन रचा था, जिस दिन सृष्टि रची थी।

यही वह योग है-जो प्राणियों के जीवन को, ईश्वर और उसकी शक्ति से जोड़ता है। मात्र मानव, इस योग में स्वतंत्रता पूर्वक-जब चाहे तब, भाग ले सकता है। बाकी प्राणी तो केवल थकावट के समय (जब उनकी जीवनी शक्ति कुछ ज्यादा ही व्यय हो जाती है, मजबूरन 'ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत' भाग लेने लग जाते हैं-

जो मनुष्य, स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेता है-उनके जीवन के आधार पर, दो नाम रखे गये-कर्मयोग और ज्ञान योग।

दोनों ही रास्तों पर साधक का मन, आन्तरिक सुख से प्रभावित होने के कारण-ब्रह्म सुख में स्थिर होने लगेगा-अर्थात् वे ब्रह्म सुख के भक्त बन जायेंगे और इस अवस्था को प्राप्त होने के बाद, 'बाद की साधना के आधार पर'; मात्र यह सुख (Bliss) मिलेगा और इस तरह से शुरु के साधकों के लिए 'भक्तियोग जैसा कोई अन्य रास्ता' नहीं है। यह भक्तियोग की अवस्था 'कर्मयोग और ज्ञानयोग की एक अवस्था के बाद'-अपने आप प्राप्त हो जाती है।

सन्त कबीर के प्रसिद्ध कथन के अनुसार यह सिद्ध हो गया कि-

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि है-मैं नाहिं।

उनका 'मैं' क्या है?

उनका मैं, स्वयं को 'ज्ञान यज्ञ के अभ्यास' द्वारा-कैसे जान लेगा?

प्रसिद्ध महात्माओं का कथन है कि; मात्र

'स्वयं को जान लेने से', सब कुछ पाने और सबको जीतने की शक्ति है।

ईश्वर दर्शन

किसी युग में भी ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं थी-

जो 'ईश्वर दर्शन' के इच्छुक नहीं थे। 'ईश्वर के दर्शन' करना चाहते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि; किस ईश्वर का दर्शन करना है?

अलग अलग मनुष्यों के मन पर, ईश्वर शब्द की एक छाप है। जिसके मन पर जैसी छाप है, उस छाप के अनुसार वह दर्शन चाहता है-लेकिन इस दर्शन से संबंधित एक बौद्धिक स्तर का प्रश्न भी उठता है-

हमें 'ईश्वर के दर्शन' क्यों करना है?

समाज में मूर्ति उपासकों की कमी नहीं है। कुछ राम के उपासक हैं-तो कुछ हनुमान के और कुछ कृष्ण के। सभी के मन में यह बसा हुआ है कि यदि इस 'आकृति के रूप में' मेरी आंखें दर्शन कर सकें-तो वह, अवश्य 'ईश्वर का दर्शन' होगा। उनके मन में एक यह विश्वास भी है कि शायद इस दर्शन से मेरे जीवन का कल्याण हो जायेगा-मेरे जीवन के सारे दु:ख हमेशा के लिए समाप्त हो जायेंगे।

राजा दशरथ, उनकी तीनों पत्नियां तथा उस समय के अयोध्यावासी को 'राम के दर्शन' अवश्य हुए थे-लेकिन फिर भी इनमें से, ना मालूम कितनों को दु:ख झेलने पड़े थे? कृष्ण का दर्शन तो कंस और उसके सभी योद्धाओं को भी हुए-जिनका वध, स्वयं श्री कृष्ण ने कयिा था। कौरवों पाण्डवों के साथ भी ऐसा ही हुआ। अत: जिनके मन में यह विश्वास बैठा हुआ है कि यदि राम और कृष्ण का दर्शन मेरी आंखें कर लें-तो मेरा तो जीवन ही सफल हो जायेगा-

उनका यह विश्वास, गलत है।

सिद्धान्त की बात यह है कि 'कल्याणकारी ईश्वर का दर्शन' इन्द्रियों के माध्यम से असम्भव है। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं-जो कहते हैं कि कल्याणकारी राम तो वह है, जो कण कण में रमा हुआ है-वह सर्वव्यापी और हर समय है। कण की परिभाषा है कि जो बिन्दु के समान हो-जो इतना सूक्ष्म हो कि किसी भी तरह से नापा न जा सके; ऐसा कल्याणकारी ईश्वर-

भक्ति के रूप में तो संभव है-लेकिन आकृति के रूप में नहीं है।

यह सृष्टि, अनन्त शक्तियों से भरी है। शक्ति का विभाजन दो तरह की शक्तियों में सम्भव है- (1) करने की शक्ति तथा (2) होने की शक्ति। करने की शक्ति, केवल वहां और उस समय है-जहां और जब मन; बुद्धि के नियन्त्रण में है। बुद्धि के नियंत्रण में क्रियाएं, 'करने की शक्ति' के माध्यम से ही होती हैं-इन शक्तियों को समाज का कोई भी मनुष्य, 'ईश्वरीय शक्ति' नहीं मानता। कुछ ऐसी शक्तियां भी हैं-जिनके माध्यम से हमारे जीवन में बहुधा अचानक कुछ हो जाता है और तर्क के आधार पर हम, यह कभी नहीं समझ पाते कि-ऐसा किसी विशेष समय में और क्यों हुआ ?

ये घटनाएं, जब सुखदायी होती हैं-तो हमारे समाज की मान्यता के अनुसार हम इसे 'ईश्वर की विशेष कृपा मानते हैं और जब ये दुखदायी होती हैं-तब हम इसे ईश्वर के द्वारा दिया हुआ दण्ड मानते हैं।

उदाहरण - कब, किस समय, कहां-भूकम्प आ जायेगा? यह कहना बहुत मुश्किल है-यातायात सम्बन्धी दुर्घटनाएं, कब और किस समय हो जायेंगी ? कोई नहीं बता पाता-किस मनुष्य के जीवन का अन्त किस समय, कब और कैसे होगा-यह समाज में हमेशा, एक रहस्यपूर्ण बात मानी जाती है।

सारी जीवात्माओं के पास एक मन और एक शरीर है। शरीर, हमेशा मृत्युलोक में रहता है। मन का अपना घर, ब्रह्म लोक-आन्तरिक जगत है। इन्द्रियों (Vehicle) के माध्यम से मन, इन्द्रिय जगत में भी भ्रमण कर लेता है-इस तरह से हम देखते हैं कि

हर जीव, दो जगत में रहता है-ब्रह्मलोक और मृत्युलोक।

मृत्युलोक, क्रियाओं के क्षेत्र के रूप में जाना जाता है-लेकिन आन्तरिक जगत दो हिस्सों में बंटा हुआ है-'भावातीत क्षेत्र', और भावों का क्षेत्र। सम्पूर्ण क्रियाओं का क्षेत्र, बदलने वाली दुनियां के नाम से जाना जाता है।

आन्तरिक जगत का भावों का क्षेत्र, बदलने वाली दुनियां है-क्योंकि हम सभी अनुभव करते हैं कि हमारे 'भावों के क्षेत्र के भाव', हर क्षण बदलते रहते

हैं-लेकिन 'भावातीत क्षेत्र' को सभी ने, 'ब्रह्म की शक्ति का भण्डार' कहा है। सम्पूर्ण क्षेत्र ही, ब्रह्म है और इसी को अपने कुछ लेखों में,

मैंने 'ब्रह्मलोक का सूर्य' भी बताया है।
यह 'भावातीत क्षेत्र', निर्गुण निराकार है।

यहां, न तो किसी भाव की संभावना है, न किसी क्रिया की और न ही किसी गुण की-किसी भी तरह की, किसी अनुभूति की संभावना नहीं है, लेकिन सत्य तो यह है कि एक और क्षेत्र है-जो कि भावों से परे है-जिस क्षेत्र की महसूसियत, हम भाव के माध्यम से नहीं कर पाते-लेकिन यह उपर्युक्त 'ईश्वरीय शक्ति के भण्डार' से भिन्न है। आज का विज्ञान हमें बताता है कि हमारे शरीर में हर समय, रक्त संचार है-लेकिन इस रक्त संचार का अनुभव, किसी को भी-किसी भी भाव के रूप में नहीं होता।

शायद यह क्षेत्र, 'भावातीत क्षेत्र' (Transcendental Field) और भावों के क्षेत्र के संगम का क्षेत्र है। विज्ञान बताता है कि हमारे शरीर में अनन्त सेल्स (Cells), हर समय क्रियाशील हैं-लेकिन इस क्रियाशीलता की गतिविधियां, हमारे भावों से तो परे हैं-लेकिन निश्चय ही 'आत्म शक्ति के भण्डार' से भी भिन्न है।

उपरोक्त भावों के और 'भावातीत क्षेत्र के संगम का क्षेत्र'-जहां निश्चय ही कुछ क्रियाशीलता है-यद्यपि इस क्रियाशीलता को अनुभव की शक्ति, हमारे भावों से भी नहीं है-निश्चय ही 'होने की शक्ति के सहारे' हो रही है, क्योंकि जो क्षेत्र, भावों से परे है-वह क्रियायों से परे तो है ही।

आन्तरिक जगत में दिल धड़कता है-धड़काया नहीं जाता, सांस चलती हैं, चलायी नहीं जाती, खाना पचता है-पचाया नहीं जाता इत्यादि। इस तरह से हम, देखते हैं कि ये 'आन्तरिक जगत के, वे क्षेत्र' हैं-जहां 'होने की शक्ति', हर समय है और इस क्षेत्र की सारी क्रियाएं, मात्र 'होने की शक्ति' के माध्यम से सक्रिय हैं।

भावों का क्षेत्र, क्रियाओं के क्षेत्र का आधार है।

ऐसी कोई क्रिया संभव नहीं, जो किसी भाव से न जुड़ी हो। लेकिन भाव, बुद्धि के

नियंत्रण में हो–या बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त हो, इनकी उत्पत्ति करना सम्भव नहीं है–अत: हमेशा ही 'होने की शक्ति' की मदद से होगी। जब भाव, बुद्धि के नियंत्रण–अर्थात् 'क्रिया शक्ति के नियन्त्रण' में हैं, उस समय भी 'होने की शक्ति' वहां है–भले ही 'करने की शक्ति' के नियन्त्रण में आ गई है। इस तरह से क्रियाओं के जगत में, जब भी मनुष्य, अपनी बुद्धि द्वारा किए हुए प्रयासों में व्यस्त है–उस समय भी 'होने की शक्ति' है, भले ही वह, 'क्रिया शक्ति' के अन्तर्गत है।

'क्रियाओं के क्षेत्र' में हम, ईश्वर द्वारा बनाई हुई बहुत सी चीजें देखते हैं–जैसे पृथ्वी, वायु मंडल; अग्नि, बादल, ध्वनि और अनन्त नक्षत्र इत्यादि। क्रियाओं के क्षेत्र में इन्हें ईश्वर ने बनाया, या 'होने की शक्ति' ने बनाया–इसलिए इस क्षेत्र में 'होने की शक्ति' हर समय है। सूर्य, उदय होता है–उदय किया नहीं जाता और इसी तरह सूर्य अस्त होता है–अस्त नहीं किया जाता। पृथ्वी घूमती है–घुमायी नहीं जाती–हवा अपने आप बहती है। बादल अपने आप बनते हैं–कभी बरसते हैं, कभी बिना बरसे चले जाते हैं–लेकिन, न बनाये जाते हैं और न ही बरसाये जाते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि 'क्रियायों के क्षेत्र' में भी, हर समय 'होने की शक्ति' विराजमान है। क्रियाशक्ति के माध्यम से हम, जहां चाहें–गन्ने का उत्पदन करें, जहां चाहें–सब्जी का उत्पादन करें, जहां चाहें–कोई फैक्टरी लगा दें–लेकिन कोई न कोई शक्ति है–जिसकी वजह से गेहूं का बीज, चना नहीं देता और चने का बीज, चावल नहीं देता इत्यादि।

'होने की शक्ति', क्रियाओं के क्षेत्र में–हर समय है, यह आसानी से महसूस किया जा सकता है। हम जानते हैं कि दो चीजों के मिलाने से, एक तीसरी चीज बन जाती है–लेकिन वह तीसरी चीज क्या बनेगी, यह हमें 'होने की शक्ति' ही बताती है। और यह तीसरी चीज, कुछ और हो जाय–ऐसा क्रियाशक्ति नहीं कर सकती।

'होने की शक्ति' केवल मन, महसूस कर सकता है–नेत्र इसका दर्शन नहीं कर सकते। समाज में नास्तिक और आस्तिक–दोनों तरह के व्यक्ति मिलते हैं–कुछ व्यक्ति, कभी कभी ऐसा भी कहते हैं कि ईश्वर किसने देखा है।

ईश्वर को 'होने की शक्ति' के रूप में, उपरोक्त तरीके से महसूस कराया जा सकता है–'होने की शक्ति' की महसूसियत ही, ईश्वर का दर्शन है। जिन मनुष्यों के मन पर यह छाप है कि ईश्वर तो कण कण में रमा है और हर समय है–उसे, 'होने की शक्ति' के रूप में ईश्वर को महसूस करना, बहुत कठिन नहीं है–लेकिन प्रश्न यह उठता है कि किस को महसूस करायें कि इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है? हर व्यक्ति, स्वयं क्यों नहीं महसूस कर लेता?

इसका उत्तर सिर्फ यह है कि 'महसूस करने की शक्ति', मनुष्य की जाग (चेतना) की अवस्था पर निर्भर रकती है। घोर निद्रा और स्वप्न की चेतना, तो क्रियाओं के क्षेत्र के उस सत्य को भी नहीं अनुभव कर सकती–जो 'जागृत अवस्था की चेतना', अनुभव कर लेती है। बिल्कुल इसी तरह से 'होने की शक्ति' के रूप में ईश्र, हर समय–हर जगह–हर कण में और हर क्रिया में, केवल उसे अनुभव होता है–जिसकी चेतना, जागृत अवस्था की चेतना से उठकर 'भावातीत चेतना' को पार कर के, ब्राह्मी चेतना में प्रवेश करती है–ऐसे लोग, जागृत अवस्था वालों को–जब महसूस भी करा देते है–तब भी 'जागृत अवस्था के व्यक्ति' के लिए यह संभव नहीं होगा। क्रियाओं के क्षेत्र में व्यस्त होने पर, हर क्रिया में इस महसूसियत को बनाए रख सके। जिन्हें, ऐसा दर्शन कराया जाता है–वे इस दर्शन से सन्तुष्ट, इसलिए भी नहीं होते–क्योंकि उपरोक्त चेतना की अवस्था में न होने से, यह दर्शन उनके लिए कल्याणकारी भी साबित नहीं होता और हर मनुष्य के मन पर यह छाप भी पड़ी हुयी है, कि हमें तो वह ईश्वर चाहिए–जो हमारे सारे दु:खों को मिटा सके।

ऐसे 'ईश्वर का दर्शन', मात्र उच्च अवस्था की चेतनाओं में हैं–जैसी ब्राह्मी, ईश्वरीय या 'अद्वैत चेतना'। इन चेतनाओं के व्यक्ति, इससे निम्न चेतना वालों को क्षणिक अनुभूति तो करा सकते हैं–लेकिन 'ईश्वर दर्शन' की 'स्थायी अनुभूति' के लिए, उन्हें एक लम्बे समय तक 'साधना का मार्ग' पकड़ना पड़ता है–

वही मार्ग, अपने को जगाने का मार्ग है।

हर मनुष्य के पास एक मन है और यही उसके सारे 'भावों का क्षेत्र' है। मन

में भाव हैं–सारी इच्छाएं हैं। सारे प्रारब्ध कर्म, इच्छाओं के रूप में हैं–और इस जन्म के क्रियमाण कर्मों के आधार पर, नए संस्कार भी हैं। क्रियमाण कर्मों के आधार पर, ज्यों ज्यों संस्कारों का घनापन बढ़ता है–त्यों त्यों मन की आत्मसत्ता कम होती जाती है।

इसके विपरीत जब साधक, ध्यान के अभ्यास (Meditation) के माध्यम से अन्तर्मुखी होकर अपने मन में आत्मसत्ता पिरोता है–तब संस्कारों का घनापन, कम होता है। जब संस्कारों का घनापन बढ़ता है, मन में जाग कम हो जाती है–अर्थात् 'मन की चेतना शक्ति', कम हो जाती है और इसके विपरीत, जब संस्कारों का घनापन कम होता है–तब मन में 'चेतना शक्ति' बढ़ती है और मनुष्य, जीवन के उन सत्यों को महसूस करने लगता है–जिन्हें महसूस करने की शक्ति, मात्र 'जागृत अवस्था' में नहीं रहती। अत: प्रमाणित होता है कि उच्च चेतना वालों के जीवन में हर क्रिया का अर्थ, कुछ और है–मात्र जागृत अवस्था वालों के जीवन में उन्हीं क्रिया का अर्थ, कुछ और हो जाता है।

उदाहरण – उच्च स्तर के जन्म वाले तो, यह महसूस करते हैं कि मृत्युलोक तो ब्रह्मज्ञान का विद्यालय है–और 'ध्यान का अभ्यास' (Meditation), इस ज्ञान को प्राप्त करने का रास्ता है।

ज्यों ज्यों ध्यान का अभ्यास, बढ़ता है–परिस्थितियां बदलती हैं।

साधक की बदलती हुयीं परिस्थितियां, ब्रह्मज्ञान की पुस्तक है और ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थियों को, यह पुस्तक–स्वयं ब्रह्म देता है। परिस्थितियां, हमारे अन्दर के ठूंस ठूंस के भरे हुए संस्कारों को उभारने का काम करती हैं–जिससे कि वे उभर कर हमारे चेतना की सतह पर आ जायं और हमारे ध्यान का अभ्यास आसानी से उसका निष्कासन कर सके–जिससे कि वह अपने मन पर पड़ी हुई प्रतिक्रियाओं के अधीन क्रियाओं से, मुक्त हो सके।

जिन लोगों को ध्यान का रास्ता नहीं मिलता–या सही 'मार्ग दर्शन' की कमी में, जो अपनी चेतना का उत्थान नहीं कर पाते–और मात्र जागृत अवस्था में रह जाते हैं–उन्हें अपनी परिस्थितियों की क्रियाएं, ब्रह्मज्ञान की किताब के रूप में नहीं

अनुभव होतीं और परिस्थितियों में हुई क्रियाएं, जिन मनुष्यों के द्वारा होती हैं–उन मनुष्यों को, उनका कर्त्ता मान लेते हैं। उन्हें क्रियाओं का श्रेय देते हैं या उन्हें क्रियाओं के लिए जिम्मेदार ठहरा कर, उनकी आलोचना करते हैं।

मात्र जागृत अवस्था में रहने वाला व्यक्ति, चेतना के अनुसार जीवन के अनुभवों के आधार पर क्रियाशील नहीं हो पाता और निम्न चेतना, उसे मात्र असत्य देखने के लिए मजबूर करती है। इस असत्य की दुनिया के दुखों और समस्याओं से निकलने के लिए वह, अपनी बुद्धि के विकास के आधार पर तर्क वितर्क करके–तरह तरह की क्रियाओं में उलझता जाता है। ऐसे लोगों को ही कहा है कि इन लोगों की क्रियाएं, प्रतिक्रियाओं के अधीन होती हैं।

ऊपर दो तरह के व्यक्तियों की बात की गई है। (1) एक वो जो निष्काम अर्थात्–निकलती हुई उत्तेजनाओं से सम्बन्धित कर्मों के माध्यम से अपनी चेतना को उठाने के रास्ते पर हैं, भले ही वे पूरी तरह से न उठा पाये हों।

(2) दूसरे वे व्यक्ति, जो निष्काम कर्मों के आधार पर स्वाभाविक क्रियाओं में व्यस्त न होकर–बुद्धि की मदद से सकाम कर्मों में व्यस्त रहकर, क्रियाशील होते हैं। इन दो तरह के कर्मों के संदर्भ में संत तुलसीदास ने कहा हैं–

कोउ न काहू सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

सही रास्ता तो मात्र उत्तेजनाओं के निष्कासन का है। निष्कासन सम्बन्धी स्वाभाविक क्रियाएं भी उसे दुखदायी स्थिति में नहीं ले जा सकतीं–भले ही वे सामाजिक और बौद्धिक दृष्टि से गलत क्यों न हों। इस तरह से जीवन में वह अवश्य सुखी है, जो अपनी उत्तेजनाओं को निकालने में सफल है–इस रास्ते पर चलने से आत्मशक्ति, मन में पिरोती है। अन्दर के बादल रूपी संस्कार, क्षीण होते हैं और पूर्ण रूप से क्षीण–अर्थात् ईश्वरीय या अद्वैत चेतना तक पहुंचने के लिए, उसे पचास साठ साल तक या इससे भी ज्यादा अभ्यास करना पड़ सकता है।

उन उच्चकोटि के महात्माओं की बात दूसरी है, जिन्होंने इस साधना का ज्यादातर भाग, पिछले जन्म में ही पूरा कर लिया हो–जैसे परमहंस रामकृष्ण,

गौतम बुद्ध, शंकराचार्य इत्यादि। जब संस्कार बहुत क्षीण हो जाते हैं–तब जीव 'भावातीत क्षेत्र' के सम्मुख हो जाता है–ब्रह्मलोक के सूर्य के सम्मुख– अर्थात् परमात्मा के सम्मुख हो जाता है। इस अवस्था का वर्णन संत तुलसीदास ने निम्न चौपाई द्वारा किया है–

सम्मुख होई जीव मोहि जबहीं।

जन्मकोटि अन्ध नासहिं तबहीं॥

साधारण साधक, जब ध्यान के समय अन्तर्मुखी होता है–तब वह अपने अन्दर के जन्म–जन्मान्तर के संस्कारों के सम्मुख हो जाता है–परमात्मा के सम्मुख नहीं होता। इसलिए आज का साधारण साधक अन्तर्मुखी होने के बाद भी, उपरोक्त चौपाई की सत्यता को अनुभव करने योग्य नहीं होता।

परमात्मा अपनी शक्ति, मन में पिरोता है। पिरोता है या चढ़ाता है–एक ही बात है। परमात्मा का मन्दिर, मन ही जाते हैं। परमात्मा के बच्चे–जीवात्माएं ब्रह्मज्ञान की शिक्षा के लिए।

यह शरीर, जीवात्मा की ओढ़नी है। यह ओढ़नी (वस्त्र) बेकार न हो जाए–इसीलिए इसे हमेशा स्वस्थ–अर्थात् 'अपने में स्थित' रखना है। मन, ब्रह्मसुख का भूखा है–इन्द्रिय सुख का नहीं–इसलिए अपने को स्वस्थ रखने के लिए, ध्यान के द्वारा ब्रह्मसुख (Bliss) को उभारना अति आवश्यक है। यदि इस ब्रह्म सुख की कमी में कोई शारीरिक कष्ट है–तो समाज में तरह तरह की प्रचलित साधनाओं की मदद, अवश्य लेनी है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा–82 : यह सब साधे ध्यान इक, बहु शाखा बल छोड़।

यही योग है जीव को, प्रभु से देता जोड़॥

अकेले ध्यान से ही सब काम हो जाते हैं और खण्ड के बहुत से तरीके छूट

जाते हैं। मनुष्य के लिए 'ध्यान योग' उचित है। यह हमें भगवान से जोड़ देता है। वर्तमान में जीने या ब्रह्म की चेतना में सतत् रहने की अवस्था प्राप्त करने के लिए, ध्यान का नियमित अभ्यास (Meditation) अनिवार्य है। इस रास्ते पर जीवन को सुखी बनाने वाली खण्ड की सारी साधनाएं स्वत: छूट जाती हैं, लेकिन खण्ड की शक्तियों का सहयोग बना रहता है–क्योंकि खण्ड की शक्तियों के मूल में भी, 'ब्रह्म शक्ति' ही है। जीवन के हर पहलू को संवारने वाली एक ब्रह्म की शक्ति है–इसलिये उस शक्ति के अतिरिक्त, अन्य शक्तियों का सहारा नहीं लेना चाहिए– आवश्यकता पड़ने पर मदद, भले ही ले लें।

केवल ध्यान का अभ्यास और स्वाभाविक क्रिया वाले साधक, भगवान के भरोसे पर उसकी शक्ति के सहारे रहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति, भगवान के निमित्त कहे जाते हैं। भ० गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से केवल निमित्त बन जाने को ही, पर्याप्त कहा है–'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन।'

दोहा–83 : कर्म न करना श्रम रहित, बनी रहे अरु जाग।

संस्कार कर भस्म दे, ऐसी प्रकटे आग॥

जागृत अवस्था में और निष्क्रिय अवस्था में श्रम रहित होकर बैठते हैं। इस से ऐसी शक्ति प्रकट होती है कि सारे संस्कार भस्म हो जाते हैं। क्रियाए कर्मन्द्रियों के माध्यम से होती है और 'बुद्धि के नियंत्रण' या 'नियंत्रण से मुक्त', जो विचार उठते रहते हैं–उन्हें कर्म कहते हैं। घोर निद्रा की अवस्था में भी कर्म होते रहते हैं–अर्थात् विचार उठते रहते हैं, पर चेतना की 'अति निम्न अवस्था के कारण' हमें उनका ज्ञान नहीं होता। भ० गीता में भी कहा गया है कि कोई भी मनुष्य एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रहता–

'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत॥'

स्मरण रहे कि प्रत्येक क्रिया का आधार कर्म ही है। सोते समय बुद्धि विश्राम करती है, इसलिये उस समय उसके नियंत्रण से मुक्त–जो कर्म होते हैं, उनमें श्रम (प्रयास) नहीं होता। यह निम्न स्तर का फल देने वाली 'ध्यान की अवस्था' है। जागृत (चेतना की कुछ उच्च) अवस्था में भी, बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त कर्म होते हैं–वे भी श्रम रहित होते हैं। बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त अवस्था में ही, संस्कार

निकलते हैं–सोते समय कम और जागृत अवस्था में काफी अधिक।

इसे ही ध्यान कहते हैं। ध्यान के समय चूंकि संस्कार बहुत तेजी से निकलते हैं, इसीलिये इस दोहे में ध्यान से अग्नि के प्रकट होकर संस्कारों के भस्म होने से उपमा दी गई है।

दोहा–84: न करने में श्रम नहीं, करने में भी नाहिं।
जीवन–पुष्प सुगन्ध तब, फले जग के माहिं॥

ध्यान करने वाले को करने में श्रम नहीं होता ओर न करने में भी श्रम नहीं होता। उसका जीवन संसार में फूल की तरह फैलता है। इसके ऊपर के दोहे में जागृत हुए, 'कर्म न करने' को ध्यान की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस दोहे में पर्याप्त समय तक 'ध्यान के अभ्यास' के बाद ही, अवस्था का वर्णन किया गया है। जब ध्यान द्वारा सुमिरन की उच्च अवस्था प्राप्त हो जाती है–तब ब्रह्म की सत्, चित् और आनन्द की शक्ति, मन में पर्याप्त मात्रा में पिरो जाती है और मन, इतना शक्तिशाली हो जाता है–कि बुद्धि उस पर समर्पित हो जाती है, अर्थात् उसमें भी 'ब्रह्म की पर्याप्त शक्ति' पिरो जाती है और वह विवेकपूर्ण हो जाती है।

ध्यान की साधना न करने वाले के जीवन में मन कमजोर रहता है। इसलिये बुद्धि उस पर हावी रहती है और इन्द्रियों से 'मन के खिलाफ' क्रिया कराने में समर्थ हो जाती है–जो जीवन के सभी प्रकार के दु:खों की जड़ है। ऐसे मनुष्य के सभी कार्य, बुद्धि नियंत्रित होने से श्रम–तनावपूर्ण और दु:खद परिणाम वाले होते हैं।

सत्, चित् और आनन्द से ओत प्रोत मन, मनमानी–अर्थात् स्वाभाविक क्रिया करने में समर्थ हो जाता है। स्वाभाविक क्रिया करने में भी, कोई श्रम नहीं होता–यह सभी जानते हैं। यही इस दोहे की प्रथम पंक्ति में कहा गया है।

दूसरी पंक्ति में इस अवस्था का समग्र जीवन पर, जो प्रभाव होता है–उसको स्पष्ट किया गया है कि जब ध्यान करने में श्रम (प्रयास) न हो और स्वाभाविक क्रिया भी होती रहे, जिसमें भी भ्रम नहीं होता–तब साधक का जीवन हर पहलू में सुख से ऐसा परिपूर्ण होता है–जैसे सुगन्ध से भरा खिला हुआ फूल। उसके चारों ओर का वातारवरण भी सुगन्धित और अनुकूल हो जाता है। उसकी दिनचर्या दूसरों को सुख देने मात्र की हो जाती है। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/– (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :–

–श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार–125001
मोबाईल : 098967–89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 3 बजे से सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 5 बजे से सायं 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका–समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं:–

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट–2, हिसार–125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER